**International Journal of Multidisciplinary Education and Research**
**www.multidisciplinaryjournals.in**
**ISSN: 2455-4588**
**Received: 10-08-2023, Accepted: 27-08-2023, Published: 11-09-2023**
**Volume 8, Issue 3, 2023, Page No. 44-45**

# भारत में सम्प्रदायवाद का उद्भव एवं विकास का एक अध्ययन

**पवन कुमार**
स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

**सारांश**
वर्तमान भारत में सम्प्रदायवाद अकेला सबसे बड़ा विनाशकारी विचारधारा का रूप ग्रहण कर चुका है। जिस पर व्यापक पैमाने पर विचार–विमर्श करना एक अति प्रासांगिक मसला बन चुका है। धर्म में व्यापक, विस्तृत एवं विशाल विचारधारा होती हैं। धर्म के इसी व्यापक, विस्तृत एवं विशाल विचारधारा से निःसृत सीमित एवं खण्ड़ित विचारधारा वाले समूह को सम्प्रदाय कहते हैं। सम्प्रदाय का संबंध और आधार धर्म तो होता ही है परंतु जब इसमें राजनीति प्रवेश कर जाती है तो समाज और राष्ट्र पर दुष्प्रभाव पड़े लगता है और धर्म की आड़ लेकर लोग राजनीतिक उथल–पुथल करने लगते हैं। धर्म और धार्मिक प्रचलन में निष्ठा सम्प्रदायवाद नहीं है। धर्म का शोषण सम्प्रदायवाद है। किसी धार्मिक समुदाय का अन्य धार्मिक समुदाय तथा राष्ट्र के खिलाफ प्रयोग करना सम्प्रदायवाद है। अतः सम्प्रदायवाद धार्मिकता नहीं है। धर्म तो मनुष्य को आध्यात्मिक अनुशासन प्रदान करता है लेकिन सम्प्रदायवाद इस अनुशासन को तोड़ता है। सम्प्रदायवादी धर्म के संकीर्ण परिवेश में अपने आपको सीमित करते हैं और अपने आपको साम्प्रदायिक दल तक ही महदूद रखते है।

**मूल शब्दः** सम्प्रदायवाद, विचार–विमर्श, प्रासांगिक, विचारधारा, शोषण, आध्यात्मिक, संकीर्ण

## भारत में सम्प्रदायवाद

साम्प्रदायिकता का बीज वहीं मौजूद होता है जहाँ एक धार्मिक समुदाय के हित दूसरे धार्मिक समुदाय के हित से टकराते हैं लेकिन प्राचीन भारत में सम्प्रदायवाद का जो रूप आज है, नहीं था। 13वीं, 14वीं और 15वीं शताब्दी के मध्य उत्तरी भारत में राजनीतिक व्यवस्था के लिए जो परिवर्तन हो रहे थे इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में साम्प्रदायिक समस्या नहीं थी बल्कि केवल राजनीतिक व्यवस्था के लिए संघर्ष होते थे। फिर भी हमें साम्प्रदायिक विद्वेष को जानने के लिए इसके अतीत को देखना होगा।

मुगलकाल में सम्प्रदायवाद तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता का सृजनः– मुगल सम्राट अकबर ने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर और दक्षिण के केवल हिंदू राजाओं को ही नहीं, बल्कि मुस्लिम राजाओं के राज्यों को भी मिलाकर किया था। लेकिन मुगल काल में हिंदुओं और मुस्लमानों के बीच जातीय संघर्ष नहीं था, पर उनमें राजनीतिक संघर्ष होते थे। जब दो संस्कृतिक किसी प्रकार परस्पर सम्पर्क में आती हैं तो इनमें से जो कम महत्त्वपूर्ण होती है वह अपने आपको अधिक महत्त्वपूर्ण संस्कृति में विलीन कर देती हैं। यह सत्य है कि भारत में स्वेच्छा से धर्म तथा सम्प्रदाय परिवर्तन को कभी बुरा नहीं माना गया है। इतना ही नहीं, बल्कि जोर–जबरदस्ती से किए गए धर्म–परिवर्तन को भी अपना असंघटित अवस्था और एक किस्म की धार्मिक उदारता के कारण सहा है। यही कारण हैं कि शिवाजी जैसे लोगों ने भी मुस्लमानों के साथ भेदभाव नहीं किया। मुस्लिम शासकों में भी धर्म भेद आपसी अलगाव का कारण नहीं बना।

हिन्दू और मुस्लिम सभ्यताएँ दोनों ही बहुत विशद और पूर्णतया विकसित थी, और साथ ही साथ एक दूसरे से बिलकुल भिन्न थी, फिर भी उन दोनों का समागम और सम्मिलन हुआ। 1857 ई० का स्वतंत्रता संग्राम इस एकता का चरम उत्कर्ष था। तब तक अंग्रेजों ने देखा कि वे अपना नवशक्ति तथा आग्नेय अस्त्रों के बल पर ही भारत में साम्राज्य न चला सकेंगे। वे स्पष्ट समझ सके कि जिस संस्कृति ने इस्लाम जैसे समाज को अपना साथी बना लिया है, वह अंग्रेजी समाज को सरलता से अपना सकेगी। इन परिस्थितियों ने भारत में पृथक अंग्रेजी बस्तियों को जन्म दिया। 'अपने लड़ाओं और शासन करों' की नीति तथा हिन्दू–मुसलमान पृथकता की भावना को दिए गए सतत् उत्तेजना द्वारा धीरे–धीरे मुस्लिम दिमाग को विकृत करना प्रारम्भ किया गया। इसी बीच सर सैय्यद अहमद खाँ का आविर्भाव हुआ। इन्हें भारतीय इतिहास में आधुनिक मुस्लिम पुनर्निमाण के जनक के रूप में लिया जाता है। लेकिन इन्होंने पुनर्निर्माण का काम कम और अंग्रेज परस्ती ज्यादा की।

## आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

सम्प्रदायवाद एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है जिसका जादू सिर पर चढ़कर बोलता है। साम्प्रदायिकता का राजनीतिक दौर ऐसा होता है कि इसमें कोई ठंड़े दिल–दिमाग से सोच नहीं पाता और बदले की भावना से ग्रसित हो जाता है। इसलिए सम्प्रदायवाद अपने–आप में कहीं से कोई गुण नहीं हैं। यह मूलतः एक राजनीतिक प्रतिक्रिया है। भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता के जो सूत्र उभरे हैं, उनमें दो बातों का विश्लेषण करना जरूरी हो जाता है। प्रथमतः राष्ट्रीयता के निर्माण के साथ धर्म की भावनाएँ कितनी दूर तक चिपकी हुई थी और इसी के बीच से साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयता का अंग बनकर किस तरह भारत में आ रही थी। यहात्र इस बात को कोई नकार नहीं सकता कि भारतीय राष्ट्रीयता का विकास हिन्दुओं के उस वर्ग से शुरू हुआ जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। इस वर्ग को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए धर्म का आश्रय लेना पड़ा था। राजा राम मोहन राय का ब्रह्म समाज का आंदोलन ऐसा ही था। तिलक और अरविंद ने राष्ट्रीय आंदोलन की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए गीता की नई व्याख्या के द्वारा उसका समर्थन किया। इतिहास पर्यावलोचन से पता चलता है कि साम्प्रदायिकता कभी भी भारतीय नहीं रही है। इसका प्रभाव भारतीय मानस पर विदेशियों की देन है। साम्प्रदायिक उन्माद के शांत होते ही विविध सम्प्रदायों के लोग पुनः एक हो जाते थे और प्रयत्न करने पर भी उनके बीच में कोई साम्प्रदायिक दीवार नहीं टिक पाती थी।

## ब्रिटिश काल में साम्प्रदायिकता का विकास

हमारे यहाँ स्पष्टतः तथा व्यापक पैमाने पर यह नहीं महसूस किया जाता है कि 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के तत्वाधान में सम्प्रदायवद का जन्म हुआ, उसे पुष्पित–पल्लवित किया गया।

इसका उपयोग उपनिवेशवादी प्रशासन के ''बांटों और शासन करो'' नीति के लिए किया गया। भारतीयों को भारतीय नागरिक के रूप में नहीं, बल्कि धार्मिक समुदायों के सदस्य के रूप में चित्रित किया गया और उस आधार पर राजनीतिक भेदभाव की भावना विकसित की गयी। ब्रिटिश उपनिवेशवादी प्रशासन के भारत के राजनीतिक मानचित्र पर उदय ने राजनीति में अलगाववाद तथा धार्मिक समुदायों के राजनीतिकरण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यह महसूस करना चाहिए कि इसी राजनीतिक ढांचे, तौर–तरीके तथा प्रक्रिया के फलस्वरूप हिन्दू सम्प्रदायवाद को अलगाववादी शक्तियों के सहयोग तथा मुस्लिम लीग के प्रतिक्रियावादी राजनीतिक प्रयास से ब्रिटिश साम्राजी सत्ता को शामिल करने की चालबाजी के कारण ही राष्ट्र का जीवच्छेदन तथा देश का बंटवारा हुआ।

## आजादी के बाद साम्प्रदायिक का विकास

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया। सम्प्रदायवाद, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक रूपांतरण की समस्या को नई परिस्थिति और नये परिप्रेक्ष्य ने नया आयाम दिया। लेकिन परम्पराओं का प्रेत बना ही रहा। 1947 से 1960 तक स्वतंत्र भारत में धार्मिक पुनरूत्थानवाद का प्रभाव कम था लेकिन 1960 के दशक से यह बढ़ने लगा था खालिस्तान के नाम पर प्रतिदिन निर्दोषों के खून से होली खेलनी शुरू हो गयी थी और आज भी जारी है पाकिस्तान द्वारा सीमा के आर–पार मुस्लिम सम्प्रदायवाद के सत्तत बिखराव ने तथा राष्ट्रवाद के रूप में इसके औपचारिक छल–कपटपूर्ण व्यवहार ने भारत के लिए समस्याएं पैदा की हैं। इसी राजनीतिक प्रणाली से उत्पन्न परिस्थिति के फलस्वरूप भारतीय जनता गैर–जनतांत्रिक तथा समता विरोधी प्रवृत्तियों तथा दुष्क्रियात्मक प्रस्तावों, विनाशकारी एवं विभाजनकारी शक्तियों सहित विरोधियों की ओर बहक जाती हैं, जिनके चलते देश के अनेक भागों में अन्तहीन, भ्रम, अराजकता तथा भीतर ही भीतर नागरिक युद्ध की परिस्थितियाँ पैदा हो गयी हैं।

## निष्कर्ष

भारत अपनी स्वाधीनता के बाद भी सतत् हिसां तथा राजनीतिक अस्थिरिकरण की ओर प्रवृत्त एक समान व्यवस्था के रूप में नजर आता है। भारत में सम्प्रदायवाद की गंभीर चुनौती न केवल हमारे घरेलू धर्मनिरपेक्ष तथा संघीय ढ़ांचे के स्थायित्व एवं कार्यप्रणाली के लिए, बल्कि हमारे राष्ट्रीय जीवन को शासन पद्वति के मूलभूत सिद्धांतों और वास्तविक अर्थ में, हमारी एकता की नई पहचान के लिए राष्ट्र के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बन गई है। आज भारत की एकता के समृद्ध, खूबसूरत एवं बहुरंगी चित्रपट पर सम्प्रदायवाद की काली साया गहरी होती जा रही है। अतः इसके समाधान के लिए साहसी कदम उठाने की जरूरत आन पड़ी है।

## संदर्भ सूची


1. रसीदुद्दीन खाँ, ''सम्प्रदायवादः आयाम एंव चुनौतियाँ'' लेफ्ट भ्यू (वेग सोसाइटी, नई दिल्ली), भो. 4, पृ. 11.
2. डा. ब्रज कुमार पांडेय, ''भारतीय राजनीति में सम्प्रदायवाद से फासिज्म का खतरा'' जनशक्ति, पटना, 31 दिसम्बर, 1967, पृ. 8.
3. नमिता सिंह, ''धर्म, साम्प्रदायिकता और राजनीति'', उत्तरगाथा, जनवरी, 1982, पृ. 126.
4. विपिनचन्द्रा, ''कम्यूनालिज्म इन मोर्डन इंडिया'', सोसल साईन्स प्रोविंग, मार्च, 1987
5. पुरननचंद जोशी, ''भारत में साम्प्रदायिकता'' गंगा, (युनाईटेड इंडिया पीरियाडिकल्स प्रा. लि., लिंक हाउस, नई दिल्ली –2, अक्टूबर–नवम्बर, 1986), संयुक्तांक, पृ. 22
6. म. अः करन्दीकर, आधुनिक भारत और इस्लाम, (ओरिएन्ट लौंगमैन, दिल्ली), पृ. 72
7. सैय्यद आविद हुसैन, दि डेस्टिनी ऑफ इंडियन मुस्लिम, पृ. 36–37.